असमाप्त किस्सों की चौथी किस्त

राजेश जोशी

जीवन और किस्से कभी समाप्त नहीं होते। मनुष्य जैसे अपना पुनरुत्पादन करता है उसी तरह किस्से भी अपनी औलादें पैदा करते रहते हैं और उनका वंश कभी समाप्त नहीं होता। मनुष्यों में बांझपन एक बार मिल भी जाये पर किस्सों में किसी किस्म का बांझपन नहीं होता। हम आप ज्यादा से ज्यादा चार पीढ़ी पहले के किसी पूर्वज को जानते होंगे। गया में फलगू नदी पर बैठा हमारे खानदान का कोई पंडा अपना खाता खोल कर अधिकतम दस पीढ़ी के नाम बता देगा। स्मृति की नदी उद्गम की दिशा में बहुत ज्यादा दूर तक नहीं बहती। किस्सों का वंशवृक्ष बनाना तो और भी टेढ़ी खीर है।

किस्से कुछ कुछ शराब की तरह होते हैं जो चाहे कितने ही मुंह और कितनी ही जबानों से होकर गुजरें लेकिन वे जूठे नहीं होते। चंडूखाने की चिलम जैसे एक के हाथ से दूसरे के हाथ में आती जाती रहती है, किस्से भी एक किस्सेबाज से दूसरे किस्सेबाज के पास सफर करते रहते हैं। चाहो तो उसे चिलम या हुक्का कुछ भी कह लो। बस उसमें तम्बाकू और आग बची रहनी चाहिए।

घर से बाहर भाग जाना जितना आसान था,
अपने भय से बाहर भाग जाना उतना आसान
नहीं था। भय एक ऐसा परजीवी था जो
गप्पी से खुराक लेकर उससे ज्यादा ताकतवर
हो गया था।

विक्टोरिया टर्मिनस पर ट्रेन से उतर कर बाहर आने तक गप्पी के लिए कुछ भी अपरिचित नहीं था। दो महीने पहले ही वह बम्बई में अपनी बहन के घर आया था। गर्मी की छुट्टियां उसने बम्बई में ही बितायी थीं। बम्बई का वह उसका पहला सफर था इसलिए उसने पैदल ही बम्बई की खाक छान मारी थी। 1962 का बम्बई मुम्बई नहीं था। न सड़कों पर बहुत भीड़ थी, न बसों में। लोकल ट्रेन में सफर करना भी बहुत कठिन नहीं था। वह अकेला ही इधर उधर भटकता रहता। मेरिन ड्राइव पर शाम ढलते ही समुद्र उछलने लगता और किनारों पर बड़े बड़े सीमेण्ट के सितारों से टकरा कर लहरें इतनी ऊंची उछलतीं कि उनकी फुआरों से फुटपाथ और आधी दूर तक सड़क भी भीग जाती। फुटपाथ पर चलते हुए वह कई बार उन फुआरों में भीगा था। बम्बई एक साफ सुथरा शहर था। बहन के घर के पास की सड़कें आधी रात के बाद धुलनी शुरू हो जातीं। भूलेश्वर का इलाका गुजरातियों का इलाका था। सुबह सुबह गुजराती महिलाओं के झुंड हाथों में पूजा की थालियां लिए मंदिरों की ओर जाते हुए दिखते। बम्बई जाना पहचाना सा शहर लग रहा था लेकिन स्टेशन से बाहर निकलते ही उसे अजीब से डर ने दबोच लिया। जैसे जैसे वह आगे बढ़ने लगा डर बड़ा होने लगा। उसके अपने कद से भी बड़ा। घर से भाग आना जितना आसान था, इस डर से बाहर भाग पाना उतना आसान नहीं था। वह जिधर भी कदम बढ़ाता डर उसी रास्ते पर आकर खड़ा हो जाता। वह समझ नहीं पा रहा था कि वह

tadbhav.com home page

किधर जाये। डर को गच्चा देकर निकलना कोई आसान काम नहीं था। चाय के एक ठेले पर खड़े होकर उसने एक चाय पी और फिर आगे बढ़ा। उसने रात को भी कुछ नहीं खाया था। सींगदाना और मुरमुरे की एक दुकान उसे दिखी तो उसने एक पुड़िया खरीदी। उसे याद आया कि बहन के घर के नीचे भी एक ऐसी ही दुकान थी। जिस पर सींगदाना और मुरमुरे मिला करते थे। मूंगफली के नमकीन दाने उसने पहली बार बम्बई में ही खाये थे। उसने पुड़िया से कुछ मुरमुरे और मूंगफली के नमकीन दाने मुंह में डाले। तभी उसे याद आया कि उसने मुंह नहीं धोया है। साथ कोई सामान नहीं था। ब्रश करना भी सम्भव नहीं था। कमीज में जगह जगह सलवटें पड़ चुकी थीं। कई सवाल एक साथ सिर उठाने लगे। वह कैसे मुंह धोयेगा। कपड़े कैसे बदलेगा। फारिग होने कहां जायेगा। उसने फुटपाथ पर नजर डाली। उसके पास कोई चादर या बिस्तरा भी नहीं था। रात वह कहां बितायेगा। फिल्मों में देखे बम्बई की फुटपाथों के कई दृश्य उसकी आंखों के आगे घूमने लगे। उसे लगा दिन अगर किसी तरह कट भी गया तो रात कहां काटेगा? उसने अपने बगल में खड़े डर की तरफ देखा डर उससे बड़ा हो चुका था। डर का कद बढ़ रहा था या उसका अपना कद छोटा होता जा रहा था, कहना मुश्किल था। उसने अपने ही डर के बगल में खड़े होकर अपना कद नापने की कोशिश की तो पाया कि वह अपने डर के कान तक भी नहीं आ पा रहा था। वह डर के बगल से हट गया लेकिन एक पल बाद ही डर फिर उसके बगल में आकर खड़ा हो गया। वापस लौटने के रास्ते में उसका अहम् खड़ा था। बहुत देर तक अपने अहम् से लड़ने झगड़ने के बाद उसने तय किया कि वह बहन के घर जायेगा। उसने मन ही मन एक कहानी बनायी और बहन के घर की तरफ चल पड़ा।

सारे रास्ते वह मन ही मन एक कहानी बनाता रहा। जिसे बहन के घर जाते ही उसे सुनाना था। बहन के घर पहुंचते पहुंचते काफी समय हो चुका था। बहन के घर के पास पहुंचते हुए वह कई बार रुका। उसने कई बार अपने को रोकने की कोशिश की। कई बार सोचा कि कम से कम एक रात वह बम्बई की सड़कों पर गुजार कर देखे। बहन के घर जाना जरूरी ही होगा तो वह एक दिन बाद भी जा सकता है। लेकिन जैसे ही वह दूसरी तरफ बढ़ने को होता उसका डर उसे धकिया कर आगे बढ़ा देता। उसका डर जो पहले उससे भी दुबला पतला और कमजोर था, देखते ही देखते उससे ज्यादा तंदुरुस्त हो गया था। डर एक ऐसा परजीवी था जो आपके ही शरीर से अपनी खुराक पाकर आपको कमजोर करता जाता है और हर दिन आपसे ज्यादा ताकतवर होता जाता है। उसने वनस्पतिशास्त्र में परजीवी पौधों के बारे में पढ़ा था। डर लेकिन कोई पौधा नहीं था। वह एक अदृश्य जीव था जो दिखता नहीं था पर था और हर घड़ी महसूस होता था। आप चाहे उसे न छू सकें लेकिन वह जब चाहे आपको छू सकता था।

बहन के घर के सामने ही कबूतरखाना था। सैकड़ों कबूतर सड़क पर डाले गये दानों को चुग रहे थे। कबूतर दाना चोंच में भरते और फड़फड़ा कर छोटी सी उड़ान भरते। सड़क के शोर पर कबूतरों की फड़फड़ाहट हावी थी। वह एक पल को रुका और पुड़िया में बचे हुए मुरमुरे और सींगदाने उसने कबूतरों के बीच फेंक दिये। कबूतरों में से कुछ कबूतर उड़े और फिर उन मुरमुरों पर टूट पड़े। वह भारी कदमों से बहन के घर की ओर बढ़ गया। बहन दूसरे माले पर रहती थी। वह धीरे धीरे सीढ़ियां चढ़ रहा था। एक थकान उसके सारे वजूद पर तारी होती जा रही थी। बहन के घर में दो कमरे और एक रसोई का छोटा सा कमरा था। एक कमरा तीसरे माले पर था। वह जीजा का अपना निजी कमरा था। उसने बहन के घर का दरवाजा खटखटाया। बहन निकल कर आयी। जीजा घर में नहीं थे। उसने राहत की सांस ली। जीजा का घर में नहीं होना आश्चर्यजनक था। जीजा का इस समय बाहर जाना उनकी दिनचर्या से मेल नहीं खाता था। उनकी दिनचर्या बहुत अजीब सी थी। वे सुबह उठने के बाद तीन चार बार बहुत देर तक उबाली हुई कड़क चाय पीते। फिर बहुत देर तक गुसलखाने में घुसे रहते। एक डेढ़ घंटे में नहा कर निकलते। इसके बाद उनकी पूजापाठ शुरू होती तो वह भी एक डेढ़ घंटे

चलती। लगभग दो या तीन बजे वे सुबह का खाना खाते। दोपहर में वे नियम से सोते और शाम को हाथ मुंह धोकर तैयार होते। कलफ लगी धोती और रेशमी कुर्ता पहन कर निकल जाते। फिर उनके वापस लौटने का कोई निश्चित समय नहीं था। वे कोने की दुकान पर एक पान खाते। वे मंझले कद के और खूब गोरे चिट्टे थे। पान उनको बहुत रचता था। बहन गप्पी को देख कर चौंकी और फिर उसने कुछ संदेह से उसकी तरफ देखा। उसने जो कहानी बनायी थी धीरे धीरे अटक अटक कर बहन को सुना दी। बहन ने उस पर कोई खास प्रतिक्रिया नहीं दी। इसी बीच जीजा आ गये थे।

जीजा के आते ही उन्हें एक तरफ ले जाकर बहन ने उनसे जाने क्या कहा। वह उनकी बातें नहीं सुन पाया। जीजा भांप गये थे। उन्होंने गप्पी से बात करने से पहले भोपाल फोन लगाया और उसके घर वालों को बता दिया कि गप्पी बम्बई पहुंच गया है। कुछ देर फोन पर बातें होती रहीं। यह अनुमान लगाना कठिन था कि दूसरी तरफ से क्या कहा जा रहा था।

पहली कहानी जो इतनी अतार्किक थी कि थोड़ी
देर में ही तर्कों के सामने ढेर हो गयी। तर्क
कल्पना को खेलने के लिए जगह नहीं देता था।

बहन शायद उसकी सुनायी कहानी जीजा को बता चुकी थी। जीजा ने बहुत तसल्ली के साथ उससे एक बार फिर उस कहानी को सुनाने को कहा। उसने एक बार फिर अपनी कहानी को दोहराया कि वह मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय में फीस भरने के लिए पैसे लेकर कालेज गया था। कालेज जाने वाली सड़क के बगल में ही एक सूखा सा नाला है। सड़क पर सीनियर लड़कों के झुंड देख कर वह डर गया और नाले की तरफ उतर गया। तभी वहां दो तीन लोगों ने उसे रोक लिया और कुछ सुंघा कर बेहोश कर दिया। फिर उन लोगों ने उसे बम्बई की ट्रेन में डाल दिया। उसको जब होश आया तो उसने पाया कि वह ट्रेन में है और इस तरह वह यहां पहुंच गया। जीजा ने इस मुख्तसर सी कहानी को सुना और कहा कोई बात नहीं। तुमने पुलिस में शिकायत नहीं की? उसने इन्कार में मुंडी हिला दी। जीजा ने एक बार फिर कहा कोई बात नहीं शाम को बात करेंगे। शाम को जीजा एक आदमी को लेकर आये और बताया कि ये सीआईडी में काम करते हैं। तुम सारी बात इन्हें बताओ... फिर देखते हैं कि क्या किया जा सकता है। गप्पी अंदर ही अंदर हार चुका था। वह समझ गया था कि उसकी कहानी में कोई दम नहीं। गप्पी ने बहुत बेमन से एक बार फिर कहानी को दोहराया। उस आदमी ने दो तीन तर्क किये। उन लोगों ने तुम्हें बेहोश क्यों किया? क्या उन्होंने तुमसे पैसे छीने? फिर वे बम्बई की गाड़ी में तुम्हें क्यों छोड़ कर गये? स्टेशन तक वे तुम्हें कैसे लाये? जब तुम्हें होश आया तो तुमसे बोगी में दूसरे लोगों ने कुछ पूछा नहीं? साधारण से सवालों के आगे ही उसकी कहानी ढेर हो गयी थी। कहानी की पूरी पोल खुल चुकी थी। पहली बार उसे लगा कि तर्क कितनी क्रूर चीज है। वह कल्पना को खेलने के लिए कोई जगह ही नहीं देता। वह कल्पना के सारे खिलौने छीन लेता है। तर्क का मैदान संकरा होता है उसमें कल्पना न हाकी खेल सकती है न सितौलिया। उसे पहली बार लगा कि उसे कहानी बनाना नहीं आता। वह कहानीकार नहीं बन सकता। फिल्मों के लिए कहानी लिखने का उसका इरादा चौपट हो गया। यह दिन लेखक बनने की उसकी इच्छा की अकालमृत्यु का दिन था। उसका मन हुआ कि वह सब कुछ सच सच बता दे। लेकिन उसकी हिम्मत दगा कर रही थी। सच कोई ऐसी कमीज नहीं थी जिसे पहन कर आप हमेशा स्मार्ट ही लगें। यह ऐसा सच था जिसे बोल कर उसे अपनी ही नजरों में अपमानित होना था। पराजित होना था। बहुत बौना हो जाना था। जीजा ने भांप लिया था कि गप्पी से जवाब देते नहीं बन रहा है। उन्होंने सीआईडी के रूप में परिचित करवाये गये आदमी को रोक दिया और बातों का रुख बदल दिया। कुछ देर बाद वह आदमी चला गया। दूसरे

दिन गप्पी ने बहन को सब कुछ बता दिया था।

कबूतर दिनभर बरामदे में गुटरगूं करते और
मन में एक अनिश्चितता कुड़कुड़ाती रहती।
सामने के घर में एक बूढ़ी कंघी
करती रहती थी।

घर के नीचे कबूतरखाने के कबूतर दुपहर में उड़ कर ऊपर आ जाते। बरामदे में दिनभर उनकी गुटरगूं की आवाज भरी रहती। शाम तक बरामदे की मुंडेर उनकी बीट से भर जाती थी। जीजा दो तीन दिनों में एक बार सुबह सुबह बाल्टी में पानी और कपड़ा लेकर कबूतरों की बीट साफ करते। उनमें कमाल का धैर्य था वह बहुत तल्लीनता से घंटों कबूतरों की बीट साफ करते रहते। बीच बीच में जब वे थक जाते तो उनके लिए चाय बनती। चाय पीते हुए वे कबूतरों को मुंडेर पर बैठने से रोकते रहते। चाय खत्म करके वे वापस बीट साफ करने में जुट जाते। कभी कभी जीजा की मां और उनकी विधवा चाची भी बम्बई आ जाती थीं। चाची सुंदर थीं और बहुत मजेदार भी। जीजा की उनसे अक्सर ही खटपट चलती रहती। चाची बहुत कम उम्र में ही विधवा हो गयी थीं। उनकी कोई संतान नहीं थी। जीजा से जब ज्यादा खटपट हो जाती तो वह सौरों चली जातीं या देवास। उन्हें बहुत सारी पहेलियां याद थीं। खासकर द्विअर्थी पहेलियां। गर्मी के दिन थे। चाची गप्पी के चौक वाले घर में आयी थीं। कई बार वह बम्बई जाते या बम्बई से देवास लौटते हुए भोपाल आतीं तो गप्पी के यहां चली आतीं। गर्मी के दिनों में सब छत पर सोते थे। शाम के बाद छत पर पानी छींट कर ठंडा कर दिया जाता और बिस्तर लगा दिये जाते। बिस्तर लगे थे गप्पी मैं और चाची छत पर थे। चाची ने कहा चलो एक पहेली बताओ। अरी री... मरी री... पूरा किया जब... चैन पड़ी तब। मैं और गप्पी बड़े हो रहे थे। हम लोग चाची के मुंह से ऐसी पहेली सुन कर झेंप गये। चाची ने कुछ देर मजा लिया और फिर कहा... अरे इसका मतलब है चूड़ी पहनाना। जब चूड़ी पहनाने वाला किसी औरत के हाथ पर चूड़ी चढ़ाता है तो वो इसी तरह की आवाज निकालती है और जब चूड़ी चढ़ जाती है तो उसे चैन आ जाता है। बस इतनी ही बात है। चाची ने आंख में अजीब सी शरारत भर कर हमें देखा और हंस पड़ीं। पिछली बार जब गप्पी बम्बई आया था तब चाची बम्बई में ही थीं। उन्हीं ने पहली बार कमला नेहरू पार्क में बने बड़े से जूते की कहानी उसे सुनायी थी। चाची को ऐसी बहुत सारी कहानियां याद थीं। वह हर कहानी कुछ इस अंदाज में सुनातीं जैसे कोई जासूसी कहानी सुना रही हों। जीजा के घर के सामने सड़क के दूसरी तरफ एक घर था जिसके छज्जे पर अक्सर एक अधेड़ सी औरत कंघा लिये बाल औंछती रहती। रात को जब बिजली जलती तो जीजा के बरामदे से उसके घर का आगे का कमरा पूरा दिखायी पड़ता। उसके कमरे में रखा रेडियो बजता रहता। कभी कभी वह रेडियो की आवाज बढ़ा देती। वह औरत अक्सर जीजा के घर की तरफ देखती रहती और जैसे ही कोई उसकी तरफ देखता वह कुछ काम करने लगती। जीजा के पिता ने आत्महत्या की थी। पुलिस में मामले को रफा दफा करने के लिये कहा गया कि वह स्टोव जला रहे थे और अचानक ही स्टोव भभक गया। अचानक उनके कपड़ों में आग लग गयी। घर में कोई नहीं था। इसलिए उन्हें बचाया नहीं जा सका। एक किस्सा यह भी था कि जीजा के पिता बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उनकी एक भविष्यवाणी विफल हो गयी और उन्होंने डिप्रेशन में आकर आत्महत्या कर ली थी। लेकिन दबी जबान से यह भी कहा जाता था कि सामने वाली औरत के चक्कर में ही उन्होंने आत्महत्या की थी। जीजा की मां उनके साथ नहीं रहती थीं। पिता जब बम्बई में रहते तो मां सौरों में रहती थीं। कभी कभी जब वे बम्बई आतीं तो पिता घूमने निकल जाते।

गप्पी बेचैन था। समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। कभी कभी उसका मन करता कि

tadbhav.com home page

वह चुपचाप यहां से भी भाग जाये। पर हिम्मत नहीं होती। एक बार की विफलता ने ही उसे अंदर से तोड़ दिया था। जीजा इस बेचैनी को समझ रहे थे। इसलिए उन्होंने कहा कि अगर वह भोपाल नहीं जाना चाहता है तो वे उसे बम्बई में ही दाखिला दिला देंगे। उसे जीजा की बात पर थोड़ा थोड़ा भरोसा भी होता। लेकिन बीच बीच में जीजा यह भी समझाते कि बम्बई के कालेज में दाखिला मिलना बहुत आसान नहीं है। भोपाल की पढ़ाई और बम्बई की पढ़ाई में भी बहुत फर्क है। फिर मार्कशीट और टीसी वगैरह तो भोपाल से लाना ही पड़ेगा। कुछ दिन बाद जब एक दिन गप्पी के मंझले भाई उसे भोपाल ले जाने को आ गये तभी उसे पता चला कि जीजा उसे सिर्फ रोके रखने के लिये ही इस तरह की बात कर रहे थे। मंझले के आते ही सारी कहानी का पटाक्षेप हो गया।

समुद्र में उठा ज्वार थम चुका था। समुद्र वापस बड़े तालाब में बदल गया था। एक शाम गोहर महल की सीढ़ियों पर सिगरेट पीते हुए डुग्गी ने कहा अपना तालाब अपना तालाब है, समुद्र कितना ही बड़ा क्यों न हो पर समुद्र किसी का अपना समुद्र नहीं होता। उदासी अब अनमनेपन में बदल चुकी थी। यह एक ऐसा अनुभव था जिसने गप्पी को पूरी तरह बदल दिया था। अब वह पहले वाला गप्पी नहीं था।

साधू बनने को भेजा गया लड़का कव्वाल
होकर लौटा। आवारगी के सिवा
किसी के पास कोई काम नहीं था।

गप्पी के लौट आने के बाद घर में तनाव बढ़ता जा रहा था। गप्पी को लगता वह एक पराजित व्यक्ति है। कभी कभी उसे लगता जैसे घर में सब उसका मजाक उड़ा रहे हैं। कई बार भाइयों से झड़प हो जाती। वह ज्यादा से ज्यादा वक्त घर के बाहर गुजारने लगा था। इस बात पर भी आये दिन झगड़े होते। न वह बाहर रह पा रहा था न घर के अंदर। वह घर में होता तो उसका दिमाग बाहर भटकता रहता और बाहर दोस्तों के बीच होता तो अचानक वह कहीं अपने ही अंदर गायब हो जाता। इन्हीं दिनों डुग्गी ने एक दिन बताया कि जगदीश लौट आया है। जगदीश मावे वाले नेमा का लड़का था। वह अक्सर स्कूल से भाग जाता। उसका मन पढ़ाई में नहीं था। आये दिन स्कूल से उसकी शिकायतें आतीं। एक दिन तंग आकर उसके पिता ने उसे सुधारने के लिए किसी आश्रम के गुरुकुल में भेज देने का निर्णय ले लिया। वह बहुत रोया। बहुत जिद की पर तब वह छोटा था। उसकी एक न चली। जिस दिन वह जा रहा था। दोस्तों के साथ गप्पी भी उसे विदा देने गया था। वह पीले रंग में रंगी धोती पहने था। बदन पर ऊंची सी बंडी थी। बाल एकदम छोटे छोटे कर दिये गये थे। एक लम्बी सी चुटइया थी जिसमें गांठ लगी हुई थी। उसकी इस हालत को देख कर हंसी भी आ रही थी और दुख भी हो रहा था। जगदीश बहुत उदास था। दोस्तों को देखा तो वह झेंप गया। उसने आंसू रोके और मुंह फेर लिया। वह चला गया। बरसों से उसका कोई पता नहीं था। हम लोग भी धीरे धीरे उसे भूल सा गये थे। जगदीश लौटा तो वह पूरी तरह बदल चुका था। चौक में जब वह मिला तो उसके बाल बढ़े हुए थे। अच्छी खासी दाढ़ी मूंछ थी। मस्जिद की सीढ़ी पर बैठा वह सिगरेट में निकाले हुए तम्बाकू को वापस भर रहा था। उसने सिगरेट जलायी तो रहस्य खुला कि वह गांजा भर रहा था। उसने कश लगाया और हम लोगों की तरफ देखा। उसकी आंखों में एक अजीब सी चमक कौंधी। उसने गांजे की सिगरेट हम लोगों की तरफ बढ़ायी लेकिन सब ने इन्कार में मुंडी हिला दी। उसका गला बचपन से ही बहुत अच्छा था। बातों का पिटारा खुला तो पता लगा कि वह आश्रम से बहुत पहले ही भाग गया था। इस बीच वह कई साल कव्वालों की सोहबत में रहा था। मस्जिद की सीढ़ियों से लगी भत्ते भाई के पिता की चांदी की दुकान थी। उसकी छत पर बैठ कर उस दिन पहली बार जगदीश ने

कव्वाली सुनायी थी। कुछ अच्छी कव्वालियां उसे याद थीं लेकिन बीच बीच में जब वह तरंग में आता तो नॉनवेज याने कुछ अश्लील कव्वालियां भी सुनाता। आश्रम के अनुशासन में कुछ ही दिन बिताने की इतनी तीखी प्रतिक्रिया उसके व्यक्तित्व में हुई थी कि उसने जगदीश को पूरी तरह आवारा बना दिया था। डुग्गी मैं और गप्पी के अलावा भी चौक के कई दोस्त अक्सर इकट्ठे होकर उससे कव्वाली सुनते थे। कुछ दिन बाद ही लेकिन उसने दोस्तों से जब तब पैसे मांगना शुरू कर दिया था। वह कई बार लम्बे चौड़े बहाने बना कर दोस्तों से पैसे मांग लेता। शुरू शुरू में तो दोस्त उसे पैसे दे देते लेकिन जल्दी ही सब समझ गये थे कि पैसे मांगना उसकी आदत हो गयी है। इसलिए दोस्त उससे कटने लगे थे। जगदीश और गप्पी दोनों ही घर से भागे थे। दोनों के भागने में लेकिन एक फर्क था। गप्पी घर से भागा था और जगदीश गुरुकुल से। लेकिन एक समानता भी थी कि दोनों लौट आये थे। दोनों के मन पराजित थे। इसलिए दोनों में थोड़ी नजदीकी बढ़ गयी थी।

जगदीश पूरी तरह आवारा हो चुका था। शहर की कई वेश्याओं से उसकी दोस्ती थी। वह कोठों पर पड़ा रहता। शहर में एक इलाका था जिसमें वेश्याओं के कोठे थे। इसी मोहल्ले में एक बहुत खटारा सा टाकीज था– लक्ष्मी टाकीज। इसलिए पूरे इलाके का नाम ही लक्ष्मी टाकीज हो गया था। लक्ष्मी टाकीज का मतलब वेश्याओं का मोहल्ला हो गया था। लक्ष्मी टाकीज में हमेशा ही सी ग्रेड फिल्में लगती थीं। इस टाकीज में फिल्म देखने का अलग ही मजा था कि आप बालकनी का टिकिट ले लें और जब फिल्म में बोर होने लगें तो बाहर की बालकनी में निकल आयें और सामने के कोठों पर चलता नाच देख लें। अक्सर लोग फिल्म के बीच सिगरेट पीने को निकलते और बालकनी में सिगरेट पीते हुए सामने के कोठों पर चलते नाच का मजा लेते। सामने की कतार के पीछे वाली कतार के कोठों का भी दृश्य बालकनी से नजर आता था। लक्ष्मी टाकीज में टिकिट सस्ता था इसलिए कभी कभी जब पैसे कम होते और फिल्म देखने की इच्छा ज्यादा ही कुलबुलाने लगती तो हम लोग लक्ष्मी टाकीज चले जाते। मैटिनी शो में कभी कभी वहां अच्छी फिल्में भी लग जाती थीं। हंटर वाली छाप कई फिल्में हमने इस टाकीज में देखी थीं। जगदीश के पिता उसे दुकान पर बैठाने की कोशिश करते। पर वह मुश्किल से ही हाथ आता था। कभी कभी जब घेरघार कर उसे दुकान पर बैठा ही दिया जाता तो वह गल्ले से रुपये मार कर दुकान से भाग जाता। उसकी उस दिन खूब पिटाई होती। पर अब उस पर पिटाई विटाई का कोई खास फर्क नहीं पड़ता।

दोस्तों का एक ऐसा ग्रुप तैयार हो चुका था जिसमें सभी ने यह तय कर लिया था कि उनको इस साल पास नहीं होना है। इम्तहान में नहीं बैठने का निर्णय सामूहिक था इसलिए इम्तहान के दिनों में इस ग्रुप का एक ही काम था कि वह कालेज में इम्तहान वाले हॉल के बाहर झुंड बनाये खड़ा रहता। सीनियर्स खिड़की के रास्ते पेपर बाहर भेज देते और यह ग्रुप किताबों से उसके उत्तर तैयार करके पर्चियां किसी तरह अंदर पहुंचाता। सारे दोस्त कालेज समय पर आते पर क्लास में कभी भूले से ही कोई जाता था। जाते भी थे तो किसी न किसी प्रोफेसर को तंग करने ही जाते या जब कोई जवान और नयी लेडी टीचर कालेज में आती तो एक दिन सब तय करके उसकी क्लास में जरू र जाते। क्लास में जाते भी तो कुछ ही देर में एक एक कर सब बाहर आ जाते और कैण्टीन में पहुंच जाते। सारा दिन कैण्टीन में बैठ कर कुर्रा खेलते और चाय और भजिये खाते रहते। कालेज से लौट कर सारी दोपहर पटियों पर बीतती। कुछ देर को घर लौटते और शाम होते होते वापस सब इकट्ठे हो जाते। फिर रात तक पटियों पर शतरंज होती रहती।

रहने वाली पोकर की चाय की दुकान।

फालतू लड़कों की इस टोली का एक ठिकाना जामा मस्जिद की सीढ़ियां थीं। जामा मस्जिद के सामने एक पुलिस चौकी थी। उसी के बगल में कुर्ते की जेब की तरह अंदर की ओर धंसी हुई एक चाय की दुकान थी। दुकान में एक अंदर की तरफ धंसा हुआ कमरा था। गप्पी के ज्यादातर दोस्त ऐसे थे जिनके पिताओं की चौक में ही दुकानें थीं। इसलिए छिप कर सिगरेट और चाय पीने के लिए इस अंदर की तरफ धंसे कमरे में ही बैठा जाता था। इस दुकान को पोकर की दुकान कहा जाता था। यह दुकान कभी बंद नहीं होती थी। इम्तहान के दिनों में आधी रात को सब यहीं चाय पीने आते थे। हालांकि पोकर के तीन भाई और थे। बड़ा श्याम था। मंझला पोकर था। उससे छोटा हरीश था और सबसे छोटा किशन था। श्याम और हरीश थोड़े खडूस थे। पोकर सीधा था और ज्यादा मिलनसार भी। दुकान उसके व्यवहार के कारण चलती थी या किशन के कारण। किशन थोड़ा जनखों जैसा था। वह अजीब मटक कर चलता। आंखों में सुरमा लगाये रहता। वह गोरा था, कमउम्र भी और भोपाली में जिसे चिकना कहते हैं वैसा चिकना भी। मनचले दोस्त और पुलिस वाले उससे छेड़छाड़ भी करते रहते। वह भी इस छेड़छाड़ के जवाब में जनखों की तरह हरकतें करता। कभी कभी जब दुकान में कोई नहीं होता तो पुलिस वाले उसके गाल पर चिकोटी काट लेते। पुलिस चौकी में जब सूनापन होता तो पुलिस वाले उसे चाय के बहाने बुला लेते। रात को वह घर लौटता तो कोई न कोई उसके पीछे लगा होता। उसका घर दुकान से थोड़ी दूर पुरानी सब्जीमंडी के पास था। एक रात गप्पी भी उसका पीछा करते हुए उसके घर की अंधेरी गली तक गया था। उसके बाद क्या हुआ यह बात बहुत कुरेदने के बाद भी कभी गप्पी ने नहीं बतायी। दुकान में सबका खाता चलता था। दोस्तों का खयाल था कि पोकर हिसाब की कॉपी में गड़बड़ी करता है और पैसे बढ़ा देता है। कभी कभी दोस्त उसके हिसाब की कॉपी पार करके उसके पृष्ठ फाड़ देते। कुछ दिन चिकचिक होती फिर सब कुछ पहले जैसा हो जाता। घंटों वहां बैठ कर गप्पी और उसके दोस्त माचिस का कुर्रा खेलते। माचिस को टेबिल की किनारे पर तिरछा रखा जाता। एक कोना जो बाहर निकला होता उसे अंगूठे से हिट करके उछाला जाता। माचिस चित गिरती तो एक प्वाइंट। आड़ी खड़ी हो जाती तो पांच प्वाइंट और सीधी खड़ी हो जाती तो दस प्वाइंट मिलते थे। कभी कभी बीच में एक खाली गिलास रख दिया जाता और माचिस अगर गिलास में चली जाती तो पच्चीस प्वाइंट मिलते। जो इस कुर्रे में हारता उसे सबकी चाय का भुगतान करना पड़ता।

शाम को दूसरा अड्डा इतवारे में भूरे की चाय की दुकान थी। भत्ते भाई के चाचा कम्युनिस्ट पार्टी में थे। इसलिए उनके चाचा को सभी चाचा कहते थे। कामरेड बालकिशन गुप्ता भोपाल विलीनीकरण ा के नेता थे। कम्युनिस्ट पार्टी को कुंआरों की पार्टी कहा जाता था। उसमें सारे नेता कुंआरे थे। सबसे पहले बड़ी उमर में बालकिशन गुप्ता ने ही शादी की थी। डुग्गी कम्युनिस्ट नहीं था। कम्युनिस्ट कोई भी नहीं था। हम कम्युनिस्ट का मतलब भी नहीं जानते थे। लेकिन चाचा के चलते कभी कभी चुनाव के दिनों में जब कोई काम बता दिया जाता तो बिना किसी हुज्जत के सब पार्टी का काम करते। आसपास के मोहल्लों में पार्टी की पर्चियां बांट आते। कम्युनिस्ट पार्टी के आफिस के सामने के खुले हिस्से को लालचौक कहा जाता था। हालांकि आम बोलचाल में कोई उस चौक को लालचौक नहीं कहता था। सब उसे इतवारा चौक ही कहते थे। यही उसका असली नाम था। अक्सर इस लाल चौक पर ही कम्युनिस्ट पार्टी की मीटिंगें होती थीं। कम्युनिस्ट पार्टी की मीटिंग शुरू होने से पहले कामरेड हबीब माइक संभाल लेते। छोटा मोटा भाषण देते। जब कुछ लोग आकर सामने बिछी दरियों पर बैठने लगते तो शहर के दो मशहूर शायर कैफ भोपाली और ताज भोपाली अपना कलाम सुनाया करते। समा बंध जाता और जब भीड़ इकट्ठी हो जाती तो मीटिंग शुरू होती। कैफ भोपाली का एक कॅता और एक गीत उन दिनों बहुत लोकप्रिय था।

कैफ भोपाली की आवाज बहुत बुलंद थी। वह ऊंचे पूरे कद्दावर पठान थे। तरन्नुम में अपनी गजल पढ़ते थे। गजल से पहले वे एक कॅता सुनाते...

न प्यार न मोहब्बत की बात करते हैं
फकत अनाज की किल्लत की बात करते हैं
ये कम्युनिस्ट गद्दार सालों को जेल में ठूंस दो
कि बगावत की बात करते हैं।

इसके बाद उनका चर्चित गीत हवाओं में गूंजने लगता...

हैया रे हैया
भूखा है बाबा नंगी मैया। हैया रे हैया...

इस गीत का एक दिलचस्प हिस्सा था...

कालिज बनाये स्कूल बनाये
लड़कन को उसमें पढ़वे बिठाये
जैसे हैं मास्टर वैसे पढ़ैया हैया रे हैया।

डुग्गी ने एक दिन कहा कि हम सब तो दारूलकुहला के सदस्य हैं...। दारूलकुहला के बारे में हम लोग नहीं जानते थे। चाचा का एक घर खाली था। वह भत्ते भाई के पास था। उन्होंने उसका एक कमरा खोल दिया था कि सब लोग यहीं बैठ कर पढ़ा करेंगे। पढ़ना किसी को नहीं था। लेकिन वहां बैठा जाने लगा। डुग्गी ने एक दिन कहा यह हमारा दारूलकुहला है। एक दिन शायद कामरेड हबीब ने या मथुरा बाबू ने हमें दारूलकुहला का किस्सा सुनाया था।

बात हम लोगों के पैदा होने के भी बारह तेरह साल पहले की थी। 1932 में जिगर मुरादाबादी भोपाल आये थे। जिगर साहब आये तो शहर के शायरों की महफिलें जमने लगीं। काहिली और कविता के बीच कोई अज्ञात सा रिश्ता जरूर था। शायरों को निकम्मा माना जाने का चलन आम था। ताज भोपाली अक्सर एक शेर सुनाते... *रख के दीवां बगल में अपने मीर/पूछते फिरिये काम... शायर का।* उनका खुद का भी एक शेर था... *किया है इश्क गजल भी कही, शराब भी पी/गरज गुजार ली मैंने तो शायरों की तरह।* जिगर साहब की महफिलें सारी सारी रात चलती थीं। जिगर साहब थोड़े बेतकल्लुफ आदमी थे। उनकी शरारतें बाहर निकलने को मचल रहीं थीं। जब रहा न गया तो एक दिन उन्होंने मुहम्मद अली खां से अपनी कसमसाहट का जिक्र किया। कई दिनों तक सिर खपाने के बाद एक दिन यह तय पाया गया कि एक अंजुमन-उल-कुहला बनायी जाये। इसमें छोटे बड़े का फर्क न हो। अंजुमन का समय रात 9 बजे से सुबह 3 बजे तक मुकर्रर किया गया। जौहर कुरैशी ने बिला वक्त लगाये अपने मकान के निचले हिस्से में एक कमरा इस अंजुमन के लिये दे दिया। इस जगह का नाम रखा गया दारूलकुहला। काहिलों का यह अपने ढंग का हिन्दुस्तान का पहला क्लब था। इसके लिए भोपाल से ज्यादा मुफीत कोई शहर हो भी नहीं सकता था। स्टेट के उस दौर में शहर और शहर में कामधंधों की जो हालत थी उसमें काहिली से ज्यादा बेहतर कोई विचार नहीं हो सकता था। दारूलकुहला का एक ही मकसद था। काहिली को आम करना और फैलाना। अच्छा खासा किस्सा चल रहा था। डुग्गी ने इतनी जोर से वाह की कि सब चौंक गये। डुग्गी की इस वाह ने घुर्रू मियां की याद दिला दी। घुरू मियां छह फुटे लहीम शहीम आदमी थे। मजाहिया शायरी करते और उनकी एक टेलरिंग की दुकान थी। उनकी टेलरिंग के बारे में अक्सर यह मजाक चलता था कि वो लोगों के कपड़े अपने नाप से सी देते हैं। किसी महफिल में अगर घुर्रू मियां होते तो उनकी वाह वाह अलग से ही सुनायी देती। उनकी दाद आती तो पढ़ने वाला शायर कुछ देर को अचकचा सा जाता, समझ नहीं पाता कि घुर्रू मियां तारीफ कर रहे हैं या मजाक उड़ा रहे हैं। कोई नया जमूरा पढ़ रहा होता तो वह अपना शेर भूल जाता।

दारूलकुहला का एक लाइन का संविधान था और उसकी फीस एक तकिया या एक ईंट

थी। हर मेम्बर को अपना सिर टिकाने के लिये अपना तकिया या अपनी ईंट लेकर आना होता था। एक लाइन का संविधान था कि लेटा हुआ, बैठे हुए को और बैठा हुआ खड़े हुए को हर हुक्म दे सकता है। मेम्बरान आते तो दरवाजे से ही रेंगते हुए अंदर दाखिल होते। गलती से अगर कोई बैठा हुआ दिख जाता या गफलत में कोई खड़े खड़े दाखिल हो जाता तो उसकी शामत आ जाती। लेटे हुए मेम्बरान उस पर हुक्मों की बारिश कर देते। मियां जरा हुक्का भर दीजिये... जरा पान ले आइये... पानी पिला दीजिये... वगैरह वगैरह। इस नियम को हर मेम्बर को मानना जरूरी था। काहिली का यह आलम था कि कहते हैं एक बार मौलवी मेंहदी साहब लेटे लेटे हुक्का पी रहे थे। इत्तफाक से किसी का हाथ लगा और अंगारों से भरी चिलम उनके सीने पर गिर गयी। मगर साहब उन्होंने हरकत न की। आहिस्ता आहिस्ता एक तरफ सरके और थोड़ा तिरछे हो कर सारे अंगारे नीचे गिरा दिये। यह किस्सा शरकी खालिदी ने बयान किया है। दारूलकुहला में लेटे लेटे ही गजल पढ़ी जाती और लेटे लेटे ही दाद दी जाती। इस क्लब के सदर जिगर मुरादाबादी थे और चार ओहदेदार थे। महमूद अली खां क्योंकि इसके संचालक थे इसलिए उन्हें इसका सेक्रेट्री याने नाजिमुलकुहला बनाया गया। गुलाम हुसैन खां को नकीबुलकुहला कहा गया उनकी आवाज बुलंद थी इसलिए उन्हें यह काम सौंपा गया। मौलवी मुहम्मद मेंहदी को उम्मुलकुहला का खिताब दिया गया। हंसते समय उनका पेट हिलता था। इसी तरह हर मेम्बर का नाम रखा गया था। जो कद में छोटे थे उन्हें फितनातुलकुहला। जिनका पेट गुम्बद की तरह था उन्हें कुब्बतुलकुहला। जो बहुत गोरे थे उन्हें सबीहुलकुहला और कामरेड खान शाकिरअली खान को जो बहुत लम्बे थे तवीलुलकुहला का खिताब दिया गया।

उन दिनों भोपाल में पंजाबियों का जोर बढ़ गया था। पता नहीं पंजाबियों और भोपालियों में किस बात पर ठन गयी थी। भोपाली गुस्से में थे। इसी दौरान सुबहे वतन नाम का एक अखबार निकला और उसने इस फूट को और बढा़ दिया। दारूलकुहला में इस गुस्से के इजहार की गूंज जिगर साहब के दो शेरों में भी सुनायी देती है।

बेताब है बेख्वाब है मालूम नहीं क्यों
दिले माही बेआब है मालूम नहीं क्यों

इसी गजल के आगे के शेरों में भोपालियों के उस दौर के गुस्से का भी पता चलता है।

भोपाल की गलियों में जिधर देखिये हर सू
पंजाब ही पंजाब है मालूम नहीं क्यों।

यू पी भी है, सी पी भी है सूबे तो बहुत हैं
एक सूबा ए पंजाब है मालूम नहीं क्यों।

किस्सा जिगर साहब के जिस शेर पर खत्म हुआ उसके आखिरी शब्द बहुत दिनों तक सबकी जबान पर चढ़ गये थे। एक मजेदार सा तकियाकलाम हो गया था.. मालूम नहीं क्यों? बात बेबात इस आधे टुकड़े का इस्तेमाल होता। डुग्गी ने कहा दिलीप साहब की फिल्म लगी है, चल रहे हो? मैंने और गप्पी ने एक साथ कहा– नहीं। डुग्गी ने कहा फिकर मत करो टिकिट के पैसे मैं दूंगा। उसे पता था कि हमारी जेबें हमेशा ही तंग रहती थीं। हम उसकी जेब को निचोड़ कर ही अपने शौक पूरे किया करते थे। लेकिन गप्पी ने कहा– नहीं। इस नहीं का मतलब नहीं, नहीं था। डुग्गी ने कुछ चिढ़ कर पूछा– क्यों? गप्पी बोलता तभी सबने एक साथ कहा– मालूम नहीं क्यों? सब हंस पड़े। डुग्गी दिलीप कुमार का फैन था। उसे लगता था कि वह दिलीप कुमार की तरह लगता है। उसे दिलीप कुमार के अंदाज में अलग अलग मुद्राओं में फोटो खिंचवाने का शौक था। दिलीप कुमार की कोई फिल्म लगती तो वह पहले दिन देखता। दिलीप कुमार के खिलाफ कोई कुछ बोलता तो वह चिढ़ जाता। टाकीज पर जब टिकिट खरीद लिये जाते तो सुभाष मुंह बना कर कहता– दिलीप कुमार कैसा बंदर की तरह

लगता है। डुग्गी बुरी तरह उखड़ जाता और गुस्सा होकर टाकीज से चल देता। दोस्त किसी तरह उसे मना कर लाते। वह वापस आता और सबको डांट कर कहता अब अगर किसी ने दिलीप साहब के बारे में कोई जुमला कसा तो वह बिना फिल्म देखे चला जायेगा। सब चुप हो जाते और मुंह घुमा कर हंसते। दिलीप कुमार दूसरे दोस्तों को भी पसंद था लेकिन डुग्गी को चिढ़ाने में सबको मजा आता। दोस्त दिलीप कुमार के तोड़ पर दारा सिंह की तारीफ करते। शहर में कभी कभी एक साथ दिलीप कुमार और दारा सिंह की फिल्म लगती, डुग्गी दिलीप कुमार की फिल्म चलने को कहता तो सारे दोस्त दारा सिंह की फिल्म का प्रस्ताव रख देते। इस पर कई बार बहुत झें झें होती। पता नहीं वह कौन सा साल था। दारा सिंह ने अपनी सौ फिल्म पूरी की थीं। उनका एक इण्टरव्यू किसी अखबार में छपा था। उसमें दारा सिंह से साक्षात्कार लेने वाले ने पूछा था कि आपको क्या स्टंट फिल्मों का दिलीप कुमार कहा जा सकता है? दारा सिंह ने कुछ मजाक में कहा– नहीं, आप चाहे तो दिलीप कुमार को सामाजिक फिल्मों का दारा सिंह कह सकते हैं। इस वाक्य को कौन कहां से पढ़ कर आया था, पता नहीं। लेकिन इस एक वाक्य ने दोस्तों की बांछें खिला दी थीं। जब भी डुग्गी दिलीप कुमार की तारीफ करने लगता दोस्त दारा सिंह का यही वाक्य दोहरा देते।

सीहोर के कालेज में एक साल। सीहोर
वाली चाची। 1857 की क्रांति के किस्से
और शतरंज का जोरी का खेल।

घर में एक तनाव था जिसके चलते घर हर कभी रबर की तरह तन जाता था। इसी के बीच किसी तरह गप्पी ने अपना फर्स्ट ईयर पास कर लिया था। सेकेण्ड ईयर में दाखिला लेने की तैयारी ही हो रही थी कि एक दिन पिता ने गप्पी को बुला कर कहा कि अब आप इस शहर में रहने लायक नहीं हैं। आप जाकर सीहोर कालेज में दाखिला ले लीजिये। पिता जब गुस्से में होते तो उनकी आवाज का पिच बहुत सपाट हो जाता। तुम की जगह वे आप कहने लगते। पिता का यह फैसला गप्पी के लिए बहुत अप्रत्याशित था। गप्पी गड़बड़ा सा गया। शहर में कम से कम चार दोस्तों का सहारा था। पर पिता का निर्णय मान लेने के अलावा कोई चारा नहीं था। पिता बहस नहीं करते थे सिर्फ फैसला सुनाते थे और उनके निर्णय बदलते नहीं थे। पिता सीहोर जाकर गप्पी की फीस जमा कर आये थे। सीहोर भोपाल से ज्यादा दूर नहीं था। बस से चालीस पैंतालीस मिनट का सफर था। कभी कभी तो कालेज के लड़के हिम्मत करके साइकिलों से फिल्म देखने भोपाल चले आते। एक बार दोस्तों के उकसाने पर गप्पी भी साइकिल से चला आया पर लौटते हुए उसकी हिम्मत जवाब दे गयी। दोस्तों ने एक ट्रक को रुकवाया और सब अपनी साइकिलों के साथ उसमें सवार हो गये। इस रास्ते पर चलने वाले ट्रक छात्रों को पहचानते थे इसलिए कभी कभी जब वे खाली होते कालेज के लड़कों को बिठा लेते। बस का किराया इस तरह बच जाता। नाके के पास ही कालेज था और उसी के बगल में हॉस्टल था। दो मंजिला हॉस्टल में मुश्किल से कुछ ही लड़के थे। सारे लड़के आसपास के गांव के थे। सिर्फ एक प्रमोद मनावत था जो इंदौर से आया था। वह थोड़ा नकचढ़ा था। उसके भी घरवालों ने उसकी आदतों से तंग आकर उसे सीहोर भेजा था। इसलिए कुछ दिन बाद उसकी और गप्पी की दोस्ती हो गयी। शाम होते ही हॉस्टल में सन्नाटा हो जाता। हॉस्टल का मैस कुछ दिन चलता फिर मैस चलाने वाले और लड़कों के बीच झगड़ा हो जाता और मैस चलाने वाला छोड़ कर चला जाता। नाके के पास सड़क की एक तरफ पंजाबी ढाबा था और दूसरी तरफ एक होटल। होटल पर सुबह सुबह बूंदी और कचौरी मिलती थी। सीहोर की बूंदी और कचौरी भोपाल तक प्रसिद्ध थी। जब मैस बंद हो जाता तो ढाबे में खाना खाना पड़ता। कॉलेज से सीहोर का शहरी इलाका थोड़ा दूर था। कॉलेज के आसपास गन्ने के

tadbhav.com home page

खेत थे। सीहोर में एक शुगर मिल थी। कभी कभी तिब्बती साधू भी सड़कों पर दिख जाते थे। दलाई लामा ने अपने कुछ अनुयायियों का सीहोर में हैण्डमेड कागज बनाने का कुटीर उद्योग लगवाया था। बहुत सुंदर हैण्डमेड कागज बनता था। कालेज से थोड़ी दूर पर बस स्टैण्ड था और उसके बाद शहर तक का रास्ता काफी सूना था। शाम के बाद शहर जाना मुश्किल होता था। राहजनी के कई किस्से प्रचलित थे। हालांकि गप्पी की जेब में इतने पैसे कभी नहीं होते कि लुटने का खतरा हो। लुटने से ज्यादा मारपीट का डर लगता था। राहजनी करने वालों के हाथ जब कुछ न लगता तो वे राहगीर से मारपीट करके अपनी भड़ास निकालते। सीहोर जिला था। भोपाल राजधानी बन जाने के बाद भी तहसील ही था। तहसील हुजूर। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में ही अंग्रेजों ने सीहोर में अपना सिविल स्टेशन बना लिया था और सीहोर गवर्नर जनरल के एजेण्ट का हेडक्वार्टर बन गया था। उसमें सेना की एक टुकड़ी रहती थी जिसे भोपाल बटालियन कहा जाता था। वहां एक छोटा सा किला था और उसके बगल में एक मस्जिद थी। इस मस्जिद में लगे शिलालेख में लिखा था कि यह मस्जिद मोहम्मद तुगलक के एक सामंत मुघीसउद्दीन ने बनवायी थी। गप्पी ने एक दिन दोस्तों से कहा कि अब उसने अपनी राजधानी तुगलकाबाद में बना लेने का फैसला कर लिया है। सारे दोस्तों ने एक स्वर में कहा और तुम्हारा तुगलकाबाद सीहोर है। डुग्गी ने जोड़ा कि उसे तुगलकाबाद के बजाय मुघीसउद्दीनाबाद कहा जाना चाहिए। कहा जाता है कि उन्नीसवीं सदी के अंतिम दिनों में भोपाल की सिकंदर बैगम ने इस मस्जिद की मरम्मत करवायी थी। किसी समय सीहोर अपनी बढ़िया मलमल के लिए भी जाना जाता था। अब वह मलमल नहीं थी, बस मलमल के कुछ किस्से थे जो धीरे धीरे मलमल की तरह ही खत्म हो चले थे।

सीहोर में तेलियों के दो समूह थे और उनमें हमेशा ही तलवारें खिंची रहती थीं। दशहरे पर तेली शस्त्र पूजा करते और फिर पूजा की तलवारें उठा कर कोई न कोई उत्पात मचा देते। मुस्लिम आबादी भी अच्छी खासी थी। तेली नहीं लड़ते तो हिन्दू मुस्लिम के बीच ठन जाती। हॉस्टल में गांव से आये लड़के जब तब कॉलेज के पास के गन्नों के खेत में घुस कर गन्ने उखाड़ लाते। कॉलेज बगल में होने की वजह से खेतों के मालिक कुछ न कह पाते। बस से आने वाले लड़के कॉलेज पर बस रुकवाने के लिए हुज्जत करते। कोई बस वाला अकड़ जाता तो उससे झगड़ा होता। एक बार एक बस वाले ने बस धीमी की पर उतरते हुए लड़का गिर गया और उसकी कॉलर बोन टूट गयी, जैसे ही कॉलेज में खबर पहुंची सारे लड़के सड़क पर आ गये। पास के खेत से गन्ने उखाड़ उखाड़ कर लट्ठ की तरह घुमाने लगे। सारा रास्ता रोक लिया। बस वाले को पता चला तो उसने बस पुलिस चौकी पर ले जाकर खड़ी कर दी। पुलिस ने आकर लड़कों को समझाया कि उन्होंने ड्राइवर को गिरफ्तार कर लिया है तब जाकर लड़के वापस अपनी क्लास में गये।

नमक चौराहे के पास ही नयी सड़क पर गप्पी के चाचा की रेडीमेड के कपड़ों की दुकान थी। दुकान के सामने वाली गली में चाचा का घर था। छुटटी के दिन गप्पी चाचा के घर चला जाता था। चाची बहुत अच्छी शतरंज खेलती थीं और सीहोर के बारे में किस्से सुनाना शुरू करतीं तो पूरी दोपहर कब कट जाती पता ही नहीं चलता। चार बजे चाची चाय बनाती और चाय पीकर गप्पी वापस हॉस्टल के लिए निकल जाता। चाचा की दो लड़कियां और दो लड़के थे। बड़ी लड़की गप्पी से बड़ी थी। बिन्दा जिज्जी की उमर ज्यादा हो गयी थी। उनकी शादी नहीं हुई थी इसलिए वो ज्यादा ही पूजा पाठ करती थीं। चाचा के घर में ही श्रीजी का मंदिर था। मंदिर की सेवा घर वालों के पास थी। मंदिर की सेवा चाची और बिन्दा जिज्जी ही करती थीं। बाकी बच्चे छोटे थे। सुबह सुबह कुएं से पानी खींच कर मंदिर की धुलाई के काम में सारे बच्चों को लगना पड़ता। श्रीजी के मंदिर की सेवा थोड़ी कठिन होती थी। श्रीजी के श्रृंगार आदि में बहुत समय लगता। चाची की सारी सुबह इसी काम में खर्च होती। दोपहर तक चाची फुरसत में हो जातीं। गप्पी अक्सर दोपहर में ही चाची के घर पहुंचता। पहली बार

tadbhav.com home page

जब गप्पी चाची के घर पहुंचा तो चाची खूब खुश हो गयीं। उनके कमरे में एक टेबिल पर शतरंज बिछी हुई थी। मोहरे भी जमे थे। लग रहा था कि कोई अभी अभी खेल के बीच से उठ कर गया है। मारे जा चुके मोहरे भी बगल में रखे हुए थे। गप्पी भी शतरंज का शौकीन था। उसने चाची से पूछा यह कौन खेल रहा था। चाची ने कहा मैं और प्रीतम दादा खेल रहे थे। प्रीतम दादा गप्पी की मां के फुफेरे भाई थे। गप्पी को प्रीतम मामा बहुत पसंद थे। वो बहुत मजेदार व्यक्ति थे। वो जितनी देर रहते उतनी देर हंसाते रहते। उन्हें शास्त्रीय संगीत बहुत पसंद था। वो गाते भी अच्छा थे लेकिन शास्त्रीय संगीत का मजाक भी खूब बनाते रहते। एक दिन उन्होंने सा रे गा मा पा धा नी सा की कई पैरोडी बनायी थीं। सा ले ग धे पा नी पी जा। दूसरी थी... सा रे दि न से पा दा नि था। गप्पी और उसके भाई अक्सर उन पैरोडियों को दोहराते रहते।

प्रीतम दादा कहीं नहीं दिख रहे थे। गप्पी ने पूछा तो चाची ने बताया कि वो तो छह सात महीने पहले आये थे। हम लोगों में जोरी का खेल होता है। जोरी का खेल इतनी आसानी से खत्म नहीं होता। उन्हें वापस जाना था। जब अगली बार आयेंगे तब आगे का खेल होगा। तब तक शतरंज ऐसे ही बिछी रहेगी। प्रीतम दादा जब आते हैं चार छह चालें होती हैं और फिर चले जाते हैं। यह बाजी तो पिछले दो साल से चल रही है। गप्पी की शतरंज अच्छी थी। नेशनल और इंटरनेशनल के नियम भी वह जानता था लेकिन जोरी का खेल उसे पता नहीं था। उसे पहली बार पता लगा कि शतरंज में एक जोरी का खेल भी होता है। जिसमें जो मोहरा जोरी पर होता है उसे मारा नहीं जा सकता। यह खेल बरसों तक चलता रहता है। अक्सर उसका कोई नतीजा नहीं निकलता। चाची तब तक दूसरी शतरंज निकाल लायी थीं। उन्होंने गप्पी से पूछा कि वह जोरी का खेल खेलेगा या दूसरा। गप्पी में इतना धैर्य नहीं था। वह कॉलेज में चैम्पियन था। उसे लगा एक दो बाजी खेल कर वह निकल जायेगा। थोड़ी देर में ही चाची ने उसे दो तीन बार मात दे दी। गप्पी का अपने खेल को लेकर सारा भरम चकनाचूर हो चुका था। गप्पी का छुट्टी का दिन उसके बाद से चाची के यहां ही बीतता। कभी कभी वह भोपाल भाग जाता। भोपाल पहुंच कर भी वह अक्सर अपने घर नहीं जाता। या तो किसी दोस्त के घर रुक जाता या हॉस्टल में किसी दोस्त के यहां पड़ा रहता।

अप्रेल 1857 में लिथोग्राफ पर छपा एक पर्चा बांटा गया था। चाची ने एक दिन 1857 का किस्सा सुनाना शुरू किया। जिसमें अंग्रेजों को देश से निकाल बाहर करने का आह्वान था। पर्चा जैसे ही सिकंदर बेगम के हाथ लगा उनके पांव के नीचे से जमीन खिसक गयी। शाम होते होते उन्होंने ब्रिटिश एजेण्ट को इसकी सूचना दे दी। वो अंग्रेजों की वफादार थीं। उस समय सीहोर मुख्यालय में साठ तोपची थे। 200 घुड़सवार थे और लगभग छह सौ पैदल सैनिक थे। ये सारे सैनिक हिन्दुस्तानी थे। कुल जमा छः अंग्रेज आफीसर थे। भोपाल और सीहोर के मुसलमान मन ही मन बहादुरशाह जफर के वफादार थे और हिन्दू नाना साहब पेशवा से सहानुभूति रखते थे। एक जुलाई को इंदौर में विद्रोह हो गया। विद्रोह को कुचलने के लिए 75 सैनिकों की एक टुकड़ी को आदेश दिया गया लेकिन सिर्फ छः सैनिकों ने ही आदेश माना, बाकी सब मुकर गये। 9 जुलाई को सीहोर के पॉलिटिकल एजेण्ट ने अपने 20 यूरोपीयों को साथ लिया और सीहोर छोड़ दिया। कमान सिकंदर बेगम को सौंप दी। इधर अंग्रेजों का पांव बाहर निकला और उधर कॉन्टिन्जेन्ट के सैनिकों ने सीहोर कैन्टोन्मेन्ट पर कब्जा कर लिया।

चाय पियोगे... चाची अपना पान लगाने को रुकीं और मुन्नी से कहा कि भैया के लिए चाय बना ला। पान दाढ़ में दबाया और फिर शुरू हो गयीं। चाची इस तरह सुना रही थीं जैसे वह 1857 की क्रांति की चश्मदीद गवाह हों।

सैनिकों ने अंग्रेजों के बंगलों, डाकघर और सीहोर के चर्च में ऐसी लूटपाट मचायी कि एक चीज भी साबुत नहीं बची। विद्रोहियों का जो नेता था न... शुजात खान पिण्डारी, उसने मुख्य अधिकारी को मार डाला। सैनिकों को सिकंदर बेगम ने आदेश दिया तो सैनिकों ने बेगम का आदेश

मानने से ही इन्कार कर दिया। इससे पहले कि कोई कार्रवाई हो पाती सीहोर कैवलरी के रिसालदार ने भी विद्रोह की घोषणा कर दी। विद्रोह को कुचलने के लिये बेगम ने भोपाल से एक टुकड़ी भेजी लेकिन यह टुकड़ी भी विद्रोहियों से जा मिली... बस इतनी ही गनीमत समझो कि उसने सीहोर के खजाने को लुटने से बचा लिया।

दिसम्बर आ गया। विद्रोह दूर दूर तक फैल चुका था। ह्यूरोज ने आखिरकार विद्रोह को कुचलने की कमान संभाल ली। पहले बंदी बना लिए गये कई विद्रोही जैलों में अभी तक बंद थे और कोर्ट मार्शल की प्रतीक्षा कर रहे थे। लगभग डेढ़ सौ लोगों को मुजरिम करार कर दिया गया। गोली मार देने के आदेश दे दिये गये। सूर्यास्त हो रहा था। सीहोर का आसमान लाल था तभी सारे कैदियों को जेल से बाहर लाया गया और लाइन में खड़ा कर दिया गया। कहा जाता है कि जब इन एक सौ पचास कैदियों को गोली मारी गयी तो एक सैनिक पता नहीं कैसे इनमें से बच निकला। वह जो निकल भागा उसका क्या हुआ, वह कहां गया? क्या यह वही है जो मुक्तिबोध की कविता में अंधेरे में तैयार कर रहा लश्कर?

चाची किस्सा सुनातीं तो लगता जैसे किसी फिल्म का साउण्डट्रेक सुन रहे हों।

एक किताब कई काम आ सकती है। पदम
याने पदम भैया की छत वाला कमरा। मैटिनी
शो और सैकिण्डहैण्ड किताब की दुकान।

गप्पी फाइनल में वापस भोपाल लौट आया था। डुग्गी आयुर्वेद की पढ़ाई करने इंदौर चला गया था। शुरू शुरू में सब उसके नाम के आगे कविराज जोड़ कर उसका मजाक उड़ाते। डुग्गी के पिता भी वैद्य थे। कविराज वैद्यक के लिए दी जाने वाली कोई डिग्री थी। डुग्गी छुट्टियों में आता जाता था। वापस लौट आने के बाद गप्पी के लिए घर में रह कर पढ़ना सम्भव नहीं था। पदम को भी पढ़ने के लिए कोई साथी चाहिए था। दोनों ने एक दिन तय किया कि वे साथ साथ स्टडी करेंगे। पदम को सभी पदम भैया कहते थे। पदम के तीन मंजिले मकान में छत पर एक कमरा था जो पदम का अपना कमरा था। छत पर होने के कारण वहां एकांत भी था। यूं पदम का परिवार बहुत बड़ा था। कई भाई बहन थे। संयुक्त परिवार था। पदम के बाबा और दो चाचा भी उसी मकान में रहते थे। लेकिन सबके अपने अपने हिस्से बंटे हुए थे। छत पर अक्सर कोई आता जाता नहीं था। इसलिए पूरी स्वतंत्रता थी।

डुग्गी के घर के पास ही नाइयों वाली गली में पदम का मकान था। नाइयों वाली गली में अब मुश्किल से ही नाइयों का कोई मकान बचा था। नाइयों के कई काम थे। हर किसी घर का अपना एक नाई होता था। गप्पी के पिता कभी सैलून में बाल कटवाने नहीं जाते थे। उनका अपना नाई था। चिमन लाल जब भी पिता के बाल काटने आता तो पिता की हजामत के बाद वह गप्पी और उसके बड़े भाई की भी हजामत करता। हजामत से पहले ही पिता कह देते की गुद्दी पर जीरो मशीन से हजामत कर देना। गप्पी को चिमन से बाल कटवाना बिल्कुल पसंद नहीं था। वह सैलून में जाकर नयी फैशन के बाल कटवाना चाहता था। इसलिए कभी कभी जब चिमन पिता जी की हजामत बनाने आता गप्पी चुपके से घर से बाहर खिसक जाता। चिमन की मां हमारे घर की खवासन थी। घर में होने वाले बुलौए और न्यौतों के लिए न्यौतने का काम उसी के हिस्से था। यह खवासन गप्पी के पैदा होने के बाद से आयी थी। पहले वाली खवासन की मृत्यु के बाद। वह अक्सर कहती कि उसे किसी बच्चे की जचकी करवाने और मालिश करने का मौका ही नहीं मिला। इसलिए जब गप्पी का छोटा भाई हुआ तो वह बहुत खुश हुई। वह छोटे को मानता का बेटा कहती थी।

पदम के बाबा ने कुछ बरस पहले ही नाइयों वाली गली में मकान बनवाया था। पदम का

tadbhav.com home page

परिवार आगरा से आया था। पदम के बाबा ने चौक में मिठाइयों की दुकान खोली थी– आगरा मिष्ठान भंडार। उन दिनों चौक में मिठाइयों की ज्यादा दुकानें नहीं थीं। एक दुकान थी जिसे मथुरा वाले की दुकान कहा जाता था। उसके बगल में ही शिब्भू चाचा का पूड़ी भंडार था। दो तीन दुकानें नमकीन की थीं। चौराहे पर एक तीन मंजिला मकान था जिसमें ऊपर की मंजिल पर खन्ना का घर था। उनके बारे में यह प्रसिद्ध था कि वो अपने घर में जुए का अड्डा चलाते हैं। उनकी छः सात लड़कियां थीं। गप्पी उनमें से एक लड़की से मन ही मन प्रेम करता था। इसलिए गप्पी अक्सर उस घर के सामने वाली सिगरेट की दुकान पर खड़ा रहता और बीच बीच में ऊपर भी देखता रहता। घर के नीचे दही वालों की दो दुकानें थीं। कल्याण सेठ की दही की दुकान भी थी और वह सट्टा खिलाने का काम भी करते थे। लेकिन उनके सट्टे का कारोबार लखेरापुरा की गली में उनके घर से चलता था। सर्राफे वाले जब रात को दुकानें बंद करके घर जाते तो पहले रतलामी सेव भंडार से खारी सेव की एक पुड़िया लेते और फिर कोने की दही की दुकान से एक दोने में दही लेकर घर जाते थे। आगरा मिष्ठान भंडार मिठाई की दूसरी दुकान थी इसलिए दुकान जल्दी ही चल निकली। पदम तब छोटा था। वह रात में अक्सर मिठाई की दुकान के बाहर निकले पटिये पर ही सोता था। सुबह सुबह कई बार जब मैं और गप्पी उधर से निकलते तो वह बड़ी बड़ी कढ़ाइयों को घिस घिस कर मांज रहा होता। एक दिन उसने हमारे ही स्कूल में आठवीं में दाखिला ले लिया। कुछ दिन तो वह सबसे कटा कटा सा रहा लेकिन जल्दी ही वह गप्पी का दोस्त बन गया। वह बहुत मेहनती था और बहुत मजेदार भी। दुकान से उसे रोज एक दोना मिठाई मिलती थी। वह दोने को छिपा कर ले आता और हम सबको उसमें से थोड़ी थोड़ी मिठाई खिलाता।

पदम और गप्पी दोनों के पास कोर्स की सारी किताबें थीं। तंगी के दिन थे। एक दिन फिल्म जाने का मन हुआ, डुग्गी लेकिन इंदौर जा चुका था वरना उसे फिल्म के लिए पटा लिया जाता और वह कहीं न कहीं से पैसे की जुगाड़ कर ही लेता। वह पैदाइशी फितरती थी। इसकी टोपी उसके सिर करने में उसे वक्त नहीं लगता था। बहुत देर तक माथापच्ची करने के बाद अचानक पदम की बत्ती जली, बोला यार पढ़ना तो हमको साथ साथ ही है फिर हर सब्जेक्ट की दो दो किताबों की क्या जरू रत है। एक किताब बेच देते हैं। आइडिया धांसू था और फिल्म देखने की इच्छा मन में कुलांचे भर रही थी। तत्काल एक किताब निकाली गयी और गप्पी और पदम सैकिण्डहेण्ड किताबों की दुकान की तरफ लपक गये। एक किताब कई काम आ सकती है। उससे इम्तहान पास किया जा सकता है यह तो गप्पी को पता था लेकिन उससे फिल्म भी देखी जा सकती है, इसके बारे में कभी नहीं सोचा था। शकर के खिलौने बेचने वाले इसी तरह की आवाजें लगाते थे कि जब तक जी चाहे खेलो, टूट जाये तो खा लो। किताब बिक गयी और फिल्म देख ली गयी। यह अदभुत फार्मूला उनके हाथ आ गया था। उसके बाद जब भी फिल्म देखने का मन होता एक किताब निकाली जाती और बेच दी जाती। इम्तहान शुरू हो गये थे। इकोलाजी के पेपर से पहले तीन दिन का गेप था। सोचा था कि गेप में ही रिवीजन किया जायेगा। किताब ढूंढना शुरू हुआ। पदम के पास किताब नहीं मिली। गप्पी ने अपनी किताबों में ढूंढा तो वहां भी किताब नदारत थी। शायद दोनों ही किताबें गलती से बेची जा चुकी थीं। बड़ी मुश्किल थी। ऐन इम्तहान के समय कोई दूसरा दोस्त भी अपनी किताब क्यों देगा। सैकिण्ड हैण्ड किताब की दुकान पर तलाश की गयी पर कहीं वह किताब नहीं मिली। नयी किताब खरीदने के लिये दोनों में से किसी के पास पैसे नहीं थे। पदम भैया ने डिक्शनरी से एक शब्द ढूंढा यूटेन्सिल्स। पदम को पैसे अपने बाबा से मांगने पड़ते थे। वे थोड़े पढ़े लिखे आदमी थे। और पैसा देने में बहुत सवाल करते थे। उन्हें धोखा देना आसान नहीं था। पदम लेकिन घर से पैसे मांगने के लिए तरह तरह के बहाने बनाने में बहुत माहिर था। कभी कभी वह पैसे का जुगाड़ करने के लिए दुकान पर बैठ जाता और मौका मिलते ही दुकान के गल्ले से कुछ पैसे मार देता। पदम को डर लग रहा था कि बाबा को

यूटेन्सिल्स का मतलब न पता हो। वह डरते डरते उनके पास गया और बहुत गम्भीर होकर कहा कि उसे कुछ पैसे चाहिए। बाबा ने भी अपनी आदत के अनुसार ही उससे सवाल किये। पदम ने कहा कि उसे यूटेन्सिल्स के लिए कैमिस्ट्री लैब में पैसे जमा करने हैं। बाबा को यह शब्द समझ नहीं आया। उन्होंने पूछा यूटेन्सिल क्या होता है। पदम ने उन्हें समझाया कि प्रेक्टिकल में जो फलास्क और टेस्ट ट्यूब आदि की जरूरत पड़ती है उन्हें यूटेन्सिल्स कहा जाता है। बाबा ने काफी नानुकर करते हुए उसे पैसे दे दिये। पैसे तो मिल गये पर किताब नहीं मिली। अब सिर्फ कापियों में बने कुछ नोट्स से ही काम चलाना था इसलिए उस पैसे से भी एक दिन फिल्म देख ली गयी।

किस्सा मनुआभान के टेकरे का। एक
राजा भोज परमार था, दूसरा मुसलमान
और तीसरा श्वेताम्बर। और
तीसरी बार घर छोड़ना गप्पी का।

फाइनल का रिजल्ट आ चुका था। गप्पी के पिता ने एक दिन गुसलखाने से निकलते हुए गप्पी से कहा कि तुम चतुर्वेदी जी के पास चले जाना, वो असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर हैं। मेरी उनसे बात हो गयी है। रेलवे में कुछ नौकरियां निकली हैं वे मदद कर देंगे। गप्पी ने कहा कि मुझे रेलवे की नौकरी नहीं करना। पिता चिढ़ गये उनकी आवाज में तनाव आ गया था। उन्होंने लगभग खीजते हुए कहा... तो अब आपने क्या करने का सोचा है? वे तुम से आप पर आ गये थे। उन्हें गुस्सा आता तो उनकी भाषा में उल्टा ही असर होता था। गप्पी ने आवाज को संयत रखने की कोशिश की और कहा कि मैं आगे पढ़ूंगा। इन लच्छनों से आप पोस्ट ग्रेजुएशन नहीं कर सकते। पिता सीढ़ियों के पास आ चुके थे और उन्हें जल्दी में ऊपर जाकर पूजा करनी थी। गप्पी ने भी थोड़ा आवाज को लम्बा कर कहा कि मैं आज तक फेल नहीं हुआ...। पर मैं आपको आगे नहीं पढ़ा सकता... पिता ने फैसला सुनाया और सीढ़ियां चढ़ गये। फाइनल में पास होने की सारी खुशी काफूर हो चुकी थी। पिनपिनाते हुए गप्पी ने चप्पल पहनी और घर से बाहर हो गया। जब वो डुग्गी के घर पहुंचा तो सब उसी का इंतजार कर रहे थे। सारे दोस्त मनुआभान की टेकरे पर गोट करने की तैयारी में लगे हुए थे। कार्यक्रम अचानक ही बना था। साइकिल के कैरियर पर खाने पीने का सामान बांधा जा रहा था। साइकिलें कम थीं और दोस्तों की संख्या ज्यादा थी। जिन साइकिलों पर खाने का सामान नहीं बंधा था उन पर दो दो लोग सवार हो गये। मनुआभान के टेकरे की चढ़ाई पर तो पैदल ही चढ़ना था इसलिए कोई दिक्कत नहीं थी। हालांकि मनुआभान के टेकरे पर गोटें अक्सर बारिश आने के बाद होती थीं। गर्मियों में ऐसा कभी कभार ही होता था पर ठलुआई का मूड बन गया तो सब चल पड़े। रिजल्ट खुलने के बाद से पिकनिक का मूड बन रहा था। चिकलोद, केरवा डेम और भदभदा के बारे में भी सोचा गया पर अंत में पता नहीं क्यों सब मनुआभान की टेकरे पर जाने को एकमत हो गये। मनुआभान के बारे में कामरेड बालकिशन गुप्ता ने बताया था कि मनुआ भांड अंधा था और वह कमलापती की गाथाएं गाया करता था। वह इसी टेकरे पर पड़ा रहता था और कभी कभी यहां बैठ कर बांसुरी बजाया करता था। इसीलिए इस टेकरे का नाम मनुआभांड का टेकरा हो गया। लेकिन अक्षय बाबू ने मनुआभान की एक अलग ही कहानी सुनायी थी...।

अक्षय बाबू के अनुसार इस पहाड़ी के निकट ही एक भांड परिवार रहता था जिसका मुखिया मनुआभांड था। इस परिवार के लोग गाने बजाने और बहुरूपिये का काम करते थे। कहते हैं कि दरबार में भी मनोरंजन करने के लिए ये लोग जाया करते थे। मनुआ भांड बहुत अच्छा कलाकार था वह तरह तरह के भेष बनाता पर राजा को कभी भ्रम में नहीं डाल पाता। एक दिन राजा ने मनुआ भांड से कहा

कि जिस दिन तुम ऐसा भेष धारण करोगे कि मैं तुम्हें पहचान न पाऊं... उस दिन मैं तुम्हें अपनी जागीर से एक गांव दे दूंगा। एक दिन मनुआ राजा के दरबार के पास पहुंचा ही था कि उसी समय एक श्वेताम्बर जैन मुनि गोचरी लेने महल पर पहुंच गये। राजा ने और उनके परिवार ने मुनि को नमन किया। मुनि आहार लेकर चले गये। मनुआ के दिमाग की बत्ती जल गयी। मनुआ चतुर था। वह जैन मुनि के पास पहुंच गया और उन्हीं की सेवा टहल करने लगा। उसने कुछ ही दिन में जैन मुनि की भाषा और व्यवहार सीख लिया। दो तीन महीने बाद जैन मुनि विहार को निकल गये।

एक दिन मनुआभान जैन श्वेताम्बर मुनि का वेश बना कर पात्र हाथ में लेकर राजा भोज के महल पर जा पहुंचा। राजा भोज और उनके परिवार ने उसकी उसी तरह आवभगत की जैसी उसने पहले वाले मुनि की आवभगत की थी। जब राजा ने मनुआ को प्रणाम किया तो मनुआ मन ही मन सोचने लगा कि वह असल में साधु हो जाये तो उसे कितना सम्मान मिलेगा। मनुआ का हृदय परिवर्तन हो गया और उस दिन के बाद वह अपने घर नहीं लौटा। कहते हैं कि मनुआ साधु हो गया और साधना से एक दिन आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुआ। यह भी माना जाता है कि भक्ताम्बर स्तोत्र के रचयिता मानतुंग आचार्य वास्तव में मनुआभान ही थे। जनश्रुति के अनुसार बारह वर्ष बाद जैनाचार्य मानतुंग का भोपाल आगमन हुआ। शहर के बहुत सारे लोग उनके दर्शन को टेकरे पर पहुंचे। राजा भोज भी अपने परिवार के साथ दर्शन को आये। उनके प्रवचन के बाद लेकिन एक अजीब घटना घटी। राजा भोज से मानतुंग महाराज ने प्रश्न किया– राजन तुमने मुझे पहचाना? राजा ने कहा महाराज आपको कौन नहीं जानता। आपकी तो कीर्ति देश देशांतर तक फैली हुई है। आचार्य ने कहा राजन ध्यान से देखो और पहचानो। राजा ने फिर अपनी बात दोहरा दी। आचार्य ने कहा कि राजन मैं वही मनुआभांड हूं जो अपने परिवार के साथ इसी टेकरे पर रहता था। राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अक्षय बाबू ने कहा कि लगता है राजा भोज नाम के कई राजा हुए होंगे। जनश्रुति के अनुसार ये राजा भोज श्वेताम्बर जैन थे। शाहजहां बेगम की किताब में एक राजा भोज वह थे जिन्होंने अपनी छत से एक टूटे हुए चांद को देख कर जब नजूमियों से उसका रहस्य जाना तो उसके बाद इस्लाम धर्म कबूल कर लिया और मुसलमान हो गये।

शाम तक दोस्त खाते पीते और मस्ती करते रहे। कुछ देर को गप्पी भी अपनी सारी चिन्ताएं भूल गया था। टेकरी से उतरते उतरते शाम हो गयी थी। गप्पी को उसकी उदासी ने वापस दबोच लिया था। डुग्गी और गप्पी दोस्तों से अलग पैदल ही आड़ी टेढ़ी पगडंडी के रास्ते से उतर रहे थे। गप्पी ने कहा यार डुग्गी लगता है अब मैं ज्यादा दिन घर में नहीं रह पाऊंगा... डुग्गी ने शुरू में तो समझाने की कोशिश की फिर बोला कुछ दिन काट ले, मैं इस महीने के आखिर में जब वापस इंदौर जाऊंगा तो तू भी मेरे साथ ही चला चलना... वहीं देखेंगे कि क्या हो सकता है। डुग्गी भी पढ़ ही रहा था। डुग्गी की बात से गप्पी को कुछ तसल्ली हो गयी थी और उसने उसके साथ जाने का मन भी बना लिया था।

गप्पी की डायरी का एक पन्ना।

मनुआभांड के टेकरे से लौट कर थकाहारा मैं घर में घुसा और घुसते ही पिता जी से सामना हो गया। उन्होंने छूटते ही बिना किसी संदर्भ के पूछा– तो आपने क्या तय किया? यह सवाल इतना अप्रत्याशित था कि मुझे कोई जवाब नहीं सूझा और मैं बिना कोई उत्तर दिये अपने कमरे में चला गया। कुछ देर यूं ही अपने बिस्तर पर आंख मूंदे पड़ा रहा। मुझे खुद नहीं पता था कि मैं क्या सोच रहा हूं शायद मैं कुछ नहीं सोच रहा था या शायद कुछ नहीं सोच पा रहा था। मैं मनुआभांड नहीं था कि जाकर साधु हो जाता। साधुओं से मुझे हमेशा से ही एक अजीब सी चिढ़ थी। इसलिए मैं मजाक में भले ही

कभी कह दूं कि मैं साधू हो जाऊंगा लेकिन मैं कभी भी साधु होना नहीं चाहता था। मैं जब बम्बई भागा तो किसी ज्योतिषी ने मेरी कुंडली देख कर घर वालों को बताया था कि इसका गुरु प्रबल है, गुरु प्रबल नहीं होता तो यह जरूर डाकू हो गया होता। मुझे यह बात बहुत मजेदार लगती थी। डाकू होने वालों में साधू होने के भी कुछ न कुछ लच्छन जरूर होते होंगे। हालांकि जगदीश के साथ उल्टा हुआ था। वह साधुओं की संगत में आवारा हो गया था। रात को अचानक ही मैंने मां को कहते सुना कि अब इस घर में कोई एक ही रह सकता है... अगर गप्पी रहेगा तो मैं नरसिंहगढ़ चली जाऊंगी। मुझे लगा कि अब डुग्गी के इंदौर जाने तक इंतजार नहीं किया जा सकता। कोई न कोई निर्णय कल ही करना होगा।

रात भर बार बार मेरी नींद खुलती रही। मैंने घर छोड़ने का निर्णय कर लिया था। दूसरे दिन पिता के चले जाने के बाद मैंने एक बैग में अपने दो जोड़े कपड़े रखे और अपनी साइकिल ली और चिल्ला कर कहा कि मैं जा रहा हूं। मां रसोई के बाहर वाले बरामदे में खड़ी थीं। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। उन्होंने मुझे बैग लेकर जाते हुए देख लिया था। बाहर आकर मैंने अपनी साइकिल के कैरियर पर बैग को लगाया और चल दिया। साइकिल छोड़ दूं या साथ ले लूं, कुछ देर तक यह द्वंद्व मेरे मन में चलता रहा लेकिन फिर मैंने साइकिल साथ ले ली। यह नाना की साइकिल थी। मैंने अपने कई महीने के वजीफे के रुपये इसमें लगाये थे। टायर ट्यूब से लेकर आधी से ज्यादा चीजें मैं इसकी बदल चुका था। मुझे नवाब साहब के यहां से पच्चीस रुपये महीने का वजीफा मिलता था। यह वजीफा हालांकि पिता के कारण ही मिलता था इसमें मेरी योग्यता का कोई योगदान नहीं था।

मालवा की एक कथा के अनुसार भर्तृहरि ने नौ बार घर छोड़ा था। वह बार बार घर छोड़ कर साधू हो जाता और बार बार वापस लौट आता। मैं भी दो बार घर छोड़ कर वापस लौट चुका था लेकिन इस बार मैं भाग कर किसी अपरिचित जगह नहीं जा रहा था। मैंने तय कर लिया था कि घर नहीं लौटूंगा... कोई न कोई नौकरी जरूर मिल जायेगी... इस बार कोई बड़े सपने आंखों में नहीं थे... कोई टुच्ची सी नौकरी करते हुए घर से अलग रहने की इच्छा लेकर ही घर से निकला था...। मैं डुग्गी के घर पहुंचा और उसे बता दिया कि मैं घर छोड़ आया हूं... डुग्गी ने कहा ठीक है, फिकर नॉट...। डुग्गी ने इसके बाद कुछ नहीं कहा। वह शायद समझ गया था कि इस समय कुछ भी ज्यादा बोलना मुझे रुला देगा। डुग्गी का बड़ा भाई उसी शाम इंदौर जा रहा था। मैंने डुग्गी से कहा अभी आता हूं... और बिना रुके चौक चला गया। चौक में एक किराये की साइकिल वाले की दुकान थी। मैंने साठ रुपये में अपनी साइकिल बेच दी। थोड़ा दुख हुआ पर जल्दी से मैंने रुपये जेब में रखे और तेज कदम से डुग्गी के घर की और लौट गया। शाम को मैं डुग्गी के भाई के साथ इंदौर चला गया।

बस में जाते हुए मुझे ताज साहब का एक शेर रह रह कर याद आ रहा था। :

मैं लम्हा लम्हा मरता जा रहा हूं
मेरा घर मेरा मक्तल तो नहीं है।